इकाई 7: लोक संस्कृति के विभिन्न रूप

इकाई की रूपरेखा:

7. 1 उद्देश्य
7. 2 प्रस्तावना
7. 3 लोकगीतों का महत्व
7. 4 लोकगीत रचना की आंतरिक प्रक्रिया
7. 5 उत्तर-पूर्वी भारत के सांस्कृतिक धरोहर: लोकगीतों का वर्गीकरण
7. 6 लोक-नाट्य की उत्पत्ति
7. 7 लोक-नाट्य की विशेषताएँ
7. 8 लोक-नाट्य परंपरा
7. 9 लोक-नृत्य की उत्पत्ति
7.10 लोक-नृत्य की प्रमुख विशेषताएँ
7.11 लोक कथा का अर्थ और स्वरूप
7.12 सारांश
7.13 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
7. 14 अधिक जानने के लिए पढ़े
7. 15 अभ्यास-प्रश्न

7.1 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन से अध्येता—

- उत्तर-पूर्वी भारत की सांस्कृतिक धरोहर से परिचित होंगे।
- लोकगीतों के महत्त्व, रचना की आंतरिक प्रक्रिया और उनके वर्गीकरण को समझेंगे।
- लोक-नाट्य की उत्पत्ति, विशेषताएँ और परंपरा का ज्ञान प्राप्त होगा ।
- लोक-नृत्य की उत्पत्ति और प्रमुख विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- लोक-कथाओं के अर्थ, स्वरूप और समाज में उनकी भूमिका को समझेंगे।
- ग्रामीण जीवन, सामाजिक मान्यताओं और सांस्कृतिक विविधता के प्रति जागरूकता होगी ।
- लोकसाहित्य और लोककला के माध्यम से परंपरागत ज्ञान और मानवीय अनुभव प्राप्त होगा ।

7.2 प्रस्तावना:

लोक संस्कृति किसी समाज की सामूहिक चेतना और जीवन का दर्पण होती है। यह उस समाज की जीवन-शैली, परम्पराएँ, विश्वास, आचार-विचार, कलात्मक प्रवृत्तियाँ और सांस्कृतिक धरोहर को अपने भीतर समेटे रहती है।लोक संस्कृति का स्वरूप केवल मनोरंजन या रंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित करने का माध्यम भी है। इसमें विभिन्न अंगों और स्वरूपों की झलक मिलती है।

1. लोक साहित्य:

लोक संस्कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा लोक साहित्य है। लोकगीत, लोककथाएँ, गाथाएँ, लोकोक्तियाँ और मुहावरे आदि लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं जिनमें कृत्रिमता का अभाव रहता है। लोकगीतों में जीवन के हर पक्ष-जन्म, विवाह, खेती-बाड़ी, पर्व-त्योहार, दु:ख-सुखकी झलक मिलती है। लोककथाएँ नैतिक मूल्यों, विश्वासों और सामाजिक धारणाओं का संचार करती हैं।

2. लोक कला और हस्तशिल्प:

लोक संस्कृति का दूसरा प्रमुख अंग लोक कला है। इसमें चित्रकला, भित्तिचित्र, लोकमूर्ति-निर्माण, कढ़ाई, बुनाई, मिट्टी के खिलौने, धातु और लकड़ी के शिल्प आदि शामिल हैं। ये कलाएँ केवल सौंदर्य के लिए नहीं बल्कि लोकजीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं और धार्मिक आस्थाओं से भी जुड़ी रहती हैं।

3. लोक संगीत और लोक नृत्य:

लोक संस्कृति में संगीत और नृत्य का विशेष स्थान है। विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित लोकनृत्य-जैसे बिहू (असम), गरबा (गुजरात), घूमर (राजस्थान), लावणी (महाराष्ट्र)-न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि सामूहिकता, उत्सवप्रियता और लोकजीवन की ऊर्जा को भी व्यक्त करते हैं। लोक वाद्ययंत्र जैसे ढोल, मृदंग, बांसुरी, एकतारा आदि लोक संस्कृति की आत्मा हैं।

4. लोक नाट्य और लोकाभिनय:

लोक संस्कृति में लोक नाट्य की परम्परा भी बहुत पुरानी है। स्वांग, नौटंकी, जात्रा, रामलीला, रासलीला आदि इसके स्वरूप हैं। इनमें धार्मिक कथाएँ, पौराणिक

आख्यान, लोकगाथाएँ और समसामयिक घटनाएँ अभिनय और गायन के माध्यम से प्रस्तुत की जाती हैं। यह केवल नाटक नहीं, बल्कि लोकजीवन का जीवंत चित्रण होता है।

5. रीति-रिवाज और संस्कार:

लोक संस्कृति में जन्म, नामकरण, विवाह, मृत्यु आदि जीवन के प्रत्येक संस्कार का अपना अलग महत्व है। इन संस्कारों के साथ जुड़े गीत, रस्में और आयोजन लोक संस्कृति की विशिष्ट पहचान हैं। इन रीति-रिवाजों के माध्यम से समाज में एकता और सामूहिकता की भावना पनपती है।

6.त्योहार और मेले:

लोक संस्कृति का एक अन्य स्वरूप पर्व-त्यौहार और मेले हैं। होली, दीपावली, बिहू, ओणम, पोंगल जैसे त्योहार न केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक हैं बल्कि लोकजीवन के आनंद और उल्लास का भी माध्यम हैं। मेलों में लोकगायन, लोकनृत्य और लोककला का सुंदर संगम दिखाई देता है।

7. वेशभूषा और आहार:

लोक संस्कृति किसी समाज की वेशभूषा, पहनावे और खान-पान से भी परिलक्षित होती है। परंपरागत परिधान, आभूषण, और क्षेत्रीय व्यंजन समाज की सांस्कृतिक विशिष्टता को प्रकट करते हैं।

8. आस्था और विश्वास:

लोक संस्कृति में धार्मिक विश्वास, लोक देवताओं की पूजा, तंत्र-मंत्र, टोटके और लोक-आचार भी शामिल हैं। ये विश्वास लोकजीवन के अनुभव और परम्परा से उपजे हैं।

लोक संस्कृति बहुआयामी और जीवंत धरोहर है। इसमें लोकजीवन के सुख-दुःख, आस्था-अनास्था, रीति-रिवाज, कला, साहित्य, संगीत और सामूहिक चेतना की सजीव झलक मिलती है। यही विविध अंग और स्वरूप किसी समाज की सांस्कृतिक पहचान को निर्मित करते हैं और उसके अतीत, वर्तमान तथा भविष्य को जोड़ते हैं। इतने विविध स्वरूप होने के बावजूद यहाँ हम केवललोकगीत, लोककथा, लोकनृत्य और लोकनाट्यके बारे में ही चर्चा करेंगे, क्योंकि ये लोक संस्कृति के सबसे जीवंत और सर्वाधिक लोकप्रिय रूप हैं। इनसे न केवल लोकजीवन की भावनाएँ और कल्पनाएँ सामने आती हैं, बल्कि इनकी अभिव्यक्ति में समाज की परम्परा, लोकानुभूति और सामूहिक चेतना भी स्पष्ट दिखाई देती है।

7. 3 लोक गीतों का महत्व :

लोकगीत अपने भीतर जीवन के सभी रंगों और प्रसंगों को समेटे हुए हैं। घर-परिवार के वातावरण में इन्हीं के माध्यम से आदर्श, मर्यादा, परम्परा और कर्त्तव्य-बोध की सरल और प्रिय शिक्षा दी जाती है। इनकी पंक्तियों में जिम्मेदारी और अनुशासन का बोध हर जगह झलकता है। शिशु जब लोरी सुनता है, तो चैन से सो जाता है।युवावस्था के उत्साह और उल्लास को ये गीत जीवंत चित्रों के रूप में प्रकट करते हैं और वृद्धावस्था के अनुभवों का संचित सार भी इन्हीं में मिलता है। ये गीत समाज रूपी उद्यान को प्रेम और सौहार्द के जल से सींचते हैं। धार्मिक आस्थाएँ और कर्मप्रधान विचार इन्हीं गीतों से प्रेरणा लेकर दूर-दूर तक प्रसारित होते हैं। लोकगीत उतने ही प्राचीन हैं जितना मानव जीवन और उतने ही नये जैसे किसी शिशु का जन्म। इनमें प्राचीन जीवन की अनुभूतियाँ, सांस्कृतिक धरोहर और देश का ऐतिहासिक दस्तावेज सुरक्षित है। अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ भी अपने वास्तविक स्वरूप में इन्हीं में संरक्षित मिलती हैं। मानव जीवन को श्रेष्ठ और अनुकरणीय बनाने वाले आदर्श और मूल्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोकगीतों के माध्यम से ही आगे बढ़ते रहते हैं। लोकगीतों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लाला लाजपत राय ने कहा है कि – "देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में इतना सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।"

लोक-गीतों की विशेषता यह है कि इनके रचनाकार, रचनाकाल और रचना-स्थल ज्ञात नहीं होते। इन्हें लोकजीवन की आत्मा कहा जाता है, क्योंकि ये जनता की मौखिक धरोहर हैं जो एक स्वर से दूसरे स्वर तक, एक हृदय से दूसरे हृदय तक पहुँचते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ते रहते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है- लोकगीत वह है, जिसमें विराट प्राण स्वयं गा उठता है। इसी कारण इन्हें Poetry of the people that sings itself भी कहा गया है। लोकगीतों की यही मौलिकता है कि वे अलिखित और अनाम होते हुए भी चिरस्थायी बने रहते हैं। इन्हें किसी निश्चित देशकाल या परिस्थिति की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। लोकगीत लोकजीवन से शक्ति ग्रहण करते हैं और बदले में जीवन को माधुर्य और सरसता प्रदान करते हैं। इन गीतों में जीवन की भावनाएँ रससिक्त होकर प्रकट होती हैं, जिसके कारण इनका अपना विशाल, विविध और रंगीन संसार निर्मित हुआ है।

7. 4 लोकगीत रचना की आंतरिक प्रक्रिया :

लोकगीत की रचना किसी एक व्यक्ति की सचेत साहित्यिक साधना नहीं, बल्किसामूहिक अवचेतन की स्वाभाविक अभिव्यक्तिहै। इसकी आंतरिक प्रक्रिया जनजीवन के अनुभवों, सुख-दुख, उत्सवों और लोक-कथाओं से प्रेरित होती है।जब कोई सामूहिक

भावना या परिस्थिति हृदय को आंदोलित करती है, तो लोक-कवि (या कोई अज्ञात रचनाकार) सीधे-सरल शब्दों और स्थानीय लय-ताल में उसे ढाल देता है। शुरुआत में यह एक कच्चा ढाँचा होता है, जो मौखिक परंपरा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में यात्रा करता है। इस यात्रा के दौरान, समुदाय के विभिन्न लोग अपनी सुविधानुसार इसमें नए शब्द जोड़ते और तराशते रहते हैं। इस प्रकार, व्यक्तिगत रचना धीरे-धीरेसामूहिक संपत्तिबन जाती है और यही इसकी आंतरिक पूर्णता की प्रक्रिया है।

लोकगीतों में रूप, लय, स्वरारोहण और स्वरावरोहण की दृष्टि से जो हिस्से समानता रखते हैं, उन्हें'झड़'कहा जाता है। गीत के हर अंतरे के बाद जो पंक्ति बार-बार दोहराई जाती है, उसे झड़ कहा जाता है। प्रायः चार या पाँच झड़ों के मेल से एक लोकगीत पूर्ण रूप ग्रहण करता है। इन गीतों की रचना में कई तत्व काम करते हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार हैं-

1. **अस्थायी** : यह गीत का प्रारम्भिक और सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होता है, जिसमें पूरे गीत का मुख्य भाव निहित रहता है। एक झड़के बाद इसी भाग की पुनरावृत्ति की जाती है ताकि गीत श्रोताओं के मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ सके।
2. **अंतरा** : स्थायी के बाद गीत के भावों का विस्तार किया जाता है, जिसे'अंतरा'कहा जाता है। यहाँ गीत की संवेदना और भाव-गहनता उभरती है।
3. **लय** : लोकगीत की आत्मा उसका लयात्मक पक्ष है। लोकगायक प्रायः अशिक्षित होते हैं, इसलिए उन्हें छन्द और मात्राओं का ज्ञान नहीं होता, परन्तु लय की पकड़ उनके पास अद्भुत होती है। यही लय लोकगीत को जीवंत और प्रभावशाली बनाती है।
4. **स्वरारोहण और स्वरावरोहण** : भावों की तीव्रता और उतार-चढ़ाव दिखाने के लिए गायक स्वर को कभी ऊँचा उठाता है (स्वरारोहण)और फिर उसे नीचे लाकर सम पर ले आता है (स्वरावरोहण)। इस प्रक्रिया से गीत में सौंदर्य और भावनात्मक गहराई उत्पन्न होती है। इसी चरण में पुच्छ पदों (अंतिम शब्द) की योजना और टेक की पुनरावृत्ति भी की जाती है।
5. **मिलान** : यह झड़ का समापन भाग है। यहाँ अंतरे और आरोह-अवरोह से गुज़रने के बाद गीत फिर से अपनी स्थायी लय पर लौट आता है। इसी कारण इसेमिलानकहा जाता है।
6. **भरती** : झड़ गाने के बाद गीत की प्रभावशीलता को बनाए रखने के लिए कुछ अतिरिक्त पद गाए जाते हैं। इन्हें'भरती'कहा जाता है। यह गीत में निरंतरता बनाए रखने का कार्य करता है।
7. **रंगत-विधान** : श्रोताओं पर विशेष प्रभाव डालने के लिए गीत के मूल भाव को छन्दों और उनके भावानुकूल परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इसेरंगत-विधानकहा जाता है, और यह लगभग सभी लोकगीतों में परंपरागत रूप से देखने को मिलता है।

8. मोड़ : जब गायक एक झड़ से दूसरी झड़ की ओर प्रवेश करता है तो उसे'मोड़'कहा जाता है। इसी तरह, स्थायी से अंतरे की ओर या अंतरे से मिलान की ओर बढ़ने की प्रक्रिया भी मोड़ कहलाती है।

7. 5 उत्तर-पूर्वी भारत के सांस्कृतिक धरोहर लोकगीतों का वर्गीकरण:

उत्तर-पूर्वी भारत को'गीतों की भूमि' भी कहा जाता है। यहअपनी विविध भाषाओं, जनजातीय परम्पराओं और सांस्कृतिक विशिष्टताओं के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ लोकगीतों की परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। इन गीतों का वर्गीकरण मुख्यतःजीवन-प्रसंग, अनुष्ठान, ऋतु-परिवर्तन तथा सामाजिक क्रियाओंके आधार पर किया जाता है -

1. जीवन-प्रसंग आधारित लोकगीत

उत्तर–पूर्वी भारत के जीवन-प्रसंगों पर आधारित लोकगीतों वहाँ के जनजीवन, प्रकृति, उत्सव और श्रम-संस्कृति की सजीव अभिव्यक्ति हैं। इन गीतों में खेती-बाड़ी, ऋतु परिवर्तन, प्रेम, विवाह, सामाजिक संबंध और सामुदायिक जीवन की झलक मिलती है।बिहूके गीत असमिया लोकजीवन के प्रमुख उदाहरण हैं, जिनमें बसंत ऋतु, प्रेम और युवाओं की उमंग का चित्रण मिलता है।नागालैंड केमोत्सुपर्व के लोकगीत सामूहिक श्रम और उत्सवधर्मिता को दर्शाते हैं। इन गीतों में प्रकृति-नदी, पर्वत, वर्षा और हरियाली-के साथ गहरा आत्मीय संबंध दिखाई देता है।मणिपुर में विवाह प्रसंगों परगाए जाने वाला 'लुहोंगबा गीत'(विवाह गीत)इस प्रकार के गीतों का अच्छा उदाहरण है।

2. कृषि एवं ऋतु-आधारित लोकगीत

उत्तर-पूर्वी भारत का समाज मुख्यतः कृषि पर आधारित है। यहाँ खेती-बाड़ी और ऋतु-चक्र से जुड़े विभिन्न प्रकार के गीत मिलते हैं।नागालैण्ड में'कृषि-गीत'बुवाई और फसल काटने के समय गाए जाते हैं।मिज़ोरम में'चपचार कुट गीत'वसंत उत्सव का प्रमुख अंग है।

3. धार्मिक एवं आनुष्ठानिक लोकगीत

धार्मिक एवं आनुष्ठानिक लोकगीतवे गीत हैं जो विभिन्न देवी-देवताओं की आराधना, पूजा-पाठ, व्रत, त्योहारों और संस्कारों के अवसरों पर गाए जाते हैं। इनमें जनमानस की अगाध श्रद्धा और सांस्कृतिक परंपराएँ समाहित होती हैं। जैसे—छठ के गीत, माता के जगराते, मुंडन, विवाह और सोहर आदि। ये गीत अनुष्ठानों को जीवंतता और पवित्रता प्रदान करते हैं। यहाँ विभिन्न जनजातियों और समुदायों में पूजा-पाठ, देवी-देवताओं की स्तुति, तथा सामुदायिक अनुष्ठानों में गीत गाए जाते हैं।असम के'बरगीत', 'बियानाम','देवगीत''ओजापाली', गारो जनजाति का'वांगला उत्सव गीत',

'अजीआ' और 'डांगमेआ गीत', त्रिपुरा के 'गरिया पूजा' गीत, 'होजागिरि गीत' आदिधार्मिक अनुष्ठानों से जुड़े गीतों के कुछ उदाहरण हैं।

4. वीरगाथात्मक एवं ऐतिहासिक लोकगीत

वीरगाथात्मक एवं ऐतिहासिक लोकगीतों में स्थानीय व राष्ट्रीय नायकों की वीरता, युद्ध, बलिदान और ऐतिहासिक घटनाओं का जीवंत वर्णन होता है। ये गीत समाज में शौर्य, देशभक्ति और स्वाभिमान की भावना जगाते हैं। इनमें इतिहास और कल्पना का सुंदर मिश्रण होता है। बुंदेलखंड का 'आल्हा-ऊदल' गीत, राजस्थान के 'चारण गीत',असम के'तुकरी गीत', 'बरफुकनार गीत', मणिपुर का 'खोंगजोंम पर्व', मेघालय का 'ऊ तिरोत सिंग की गाथा'आदि ऐतिहासिक घटनाओं, युद्धों और वीरता की गाथा सुनाते हैं।

5. मनोरंजन एवं नृत्य-संबद्ध लोकगीत

गीत और नृत्य उत्तर-पूर्वी भारतीय समाजके अविभाज्य अंग हैं। श्रमजीवि समाज स्वयं को तरोताजा रखने एवं थकान मिटाने के लिए विभिन्न प्रकार के गीत गाता है और नृत्य करता है जिससे उसे भरपूर मनोरंजन प्राप्त होता है। असम का बिहू नृत्य-गीत, मणिपुर कारासलीला नृत्-गीत, मिज़ो युवाओं का सामूहिक बाँस नृत्य-गीत आदि इस श्रेणी में आते हैं। इन गीतों का जुड़ाव जीवन और समाज के हर पहलू से है। ये नृत्य-गीत केवल मनोरंजन के साधन नहीं, बल्किसामाजिक इतिहास, सांस्कृतिक मूल्य और सामूहिक चेतनाके वाहक भी हैं। यहाँ उत्तर-पूर्वी भारत की लोकगीत परम्परा और उसके वर्गीकरण का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। (इसके विस्तृत रूप का अध्ययन आगामी इकाई में किया जाएगा।)

7. 6 लोक-नाट्य की उत्पत्ति :

मानव-सभ्यता के आरंभिक चरण में मनुष्य अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए मुख्यतः आंगिक चेष्टाओं (हाव-भाव एवं शारीरिक संकेतों) का सहारा लेता था। वाणी का विकास उस समय तक पूर्ण रूप से नहीं हुआ था, इसलिए उसकी संवेदनाएँ और अनुभव इन चेष्टाओं के माध्यम से ही अभिव्यक्त होते थे। यही अभिव्यक्ति की शैली आगे चलकर अभिनय का प्रारम्भिक रूप बनी और यहीं से लोक-नाट्य की दिशा में मनुष्य का पहला कदम माना जा सकता है। सामाजिक संगठन और सामूहिक जीवन के विस्तार ने मनुष्य को केवल आवश्यकताओं की पूर्ति से आगे बढ़ाकर मनोरंजन की ओर उन्मुख किया। आंगिक चेष्टाओं के प्रयोग में जब अभिनय का समावेश हुआ, तब मनुष्य ने अपने समाज की विसंगतियों, विडंबनाओं और जीवन के हास्य-विषाद को भी आंगिक अभिव्यक्ति देनी शुरू की। धीरे-धीरे इन अभिव्यक्तियों ने मनोरंजन का रूप धारण किया और इसी से लोक-नाट्य के आदिरूप का जन्म हुआ। भारतीय परम्परा में यह धारणा भी गहराई से स्थापित है कि जब समाज के एक बड़े

वर्ग को वैदिक-पाठ से वंचित कर दिया गया, तब स्वयं ब्रह्मा नेनाट्य-वेदका सृजन किया। इसे पाँचवाँ वेद कहा गया, ताकि सभी वर्गों के लोग धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक शिक्षा से लाभान्वित हो सके। इस प्रकार नाटक और लोक-नाट्य केवल मनोरंजन के साधन नहीं रहे, बल्कि वे शिक्षण, उपदेश और समाज-सुधार के भी माध्यम बन गए। विश्व स्तर पर भी विद्वानों का मत है कि नाटक की उत्पत्ति धार्मिक चेतना और आस्था से जुड़ी हुई है। डॉ. वेदपाल खन्ना के अनुसार, "संसार के प्रायः सभी देशों में नाटक के आदिरूप का उदय किसी-न-किसी धार्मिक भावना अथवा चेतना के फलस्वरूप हुआ है। वीर पूजा की भावना धार्मिक उपदेश-आदेश, जो कि प्रायः प्राणिमात्र के हृदय में किसी-न-किसी अंश में निहित रहता है, धीरे-धीरे नाटक का रूप धारण कर लेता है। यद्यपि अपने आदिरूप में यह नाटक बड़ा ही साधारण और अपरिमार्जित होता है।"

सभ्यता और संस्कृति की निरंतर उन्नति के साथ मनुष्य ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में संयम, मर्यादा और शिल्पगत परिपक्वता जोड़ दी। उसकी असंयमित और सहज चेष्टाएँ अब नियंत्रित और कलात्मक रूप में प्रकट होने लगीं। यही संयमित और कलात्मक अभिव्यक्ति लोक-नाट्य तथा नाट्यकला के आदिस्रोत के रूप में देखी जाती है।

स्मरणीय बिंदु : –

- असम की लोक संस्कृति बहुरंगी लोक परंपराओं से समृद्ध है।
- इसमें विशेष रूप से बिहू उत्सव, बिहू गीत और बिहू नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान है।
- लोककथाएँ और लोकनाट्य इसकी प्रमुख अभिव्यक्तियाँ हैं।
- 'अंकिया नाट' और 'ओझापाली' जैसे लोकनाट्य इसके महत्वपूर्ण अंग हैं।
- यह संस्कृति कृषक जीवन को प्रमुख रूप से अभिव्यक्त करती है।
- प्रकृति के साथ गहरा संबंध इसकी विशेषता है।
- सामाजिक सामूहिकता और लोकजीवन की झलक इसमें स्पष्ट दिखाई देती है।
- इसका आधार कृषि प्रधान जीवन और प्रकृति-निष्ठ परंपरा है।
- लोकगीत, नृत्य, नाटक और उत्सवों में यह संस्कृति सजीव रूप से प्रकट होती है।

7. 7 लोक-नाट्य की विशेषताएँ:

लोक-नाट्य अपनी विशिष्टताओं के कारण शिष्ट या साहित्यिक नाट्यों से भिन्न स्थान रखते हैं। ये न केवल लोक की सामूहिक चेतना और संवेदनाओं को उजागर करते हैं, बल्कि अपनी प्रस्तुति शैली, कथानक और अभिनय-पद्धति में भी स्वतंत्र पहचान रखते

हैं। जगदीशचन्द्र माथुर ने लोक-नाट्यों की निम्न प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है-

1. सामूहिक अभिव्यक्ति

लोक-नाट्य व्यक्ति-विशेष की भावनाओं की बजाय संपूर्ण लोकसमुदाय की अनुभूतियों और प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें प्रयुक्त संवाद प्रायः पद्यात्मक शैली में होते हैं, जो इन्हें सहज और गेय बना देते हैं। पद्यात्मक संवादों के कारण ये जनमानस के लिए अधिक आकर्षक और स्मरणीय हो जाते हैं।

2. रूढ़ पात्र (टाइप कैरेक्टर)

लोक-नाट्यों के पात्र किसी एक व्यक्ति की कहानी नहीं कहते, बल्कि किसी पूरे समूह या प्रवृत्ति का प्रतीक होते हैं। जैसे- नायक, नायिका, विदूषक या विरोधी पात्र समाज में व्याप्त विशेषताओं और प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं अथवा ये किसी एक भूमिका के लिए रूढ़ होते हैं।'टाइप कैरेक्टर' से आशय उन पात्रों से है, जो किसी विशिष्ट सामाजिक वर्ग, प्रवृत्ति या गुण का प्रतिनिधित्व करते हैं, न कि किसी जटिल और व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व का। ये पात्र प्रतिनिधि स्वरूप के होते हैं और किसी एक प्रमुख गुण या दोष-जैसे लोभ, वीरता, चतुराई या हास्य आदि को स्थायी रूप से अभिव्यक्त करते हैं। इनके चरित्र में विकास या परिवर्तन बहुत कम होता है, इसलिए ये सरल, स्पष्ट और दर्शकों के लिए आसानी से पहचानने योग्य होते हैं। लोक नाट्य में ऐसे पात्रों के माध्यम से समाज के सामान्य रूप, जैसे लोभी बनिया, चालाक महाजन, वीर नायक या विदूषक आदिका चित्रण किया जाता है। इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना ही नहीं, बल्कि शिक्षा देना और सामाजिक संदेश प्रस्तुत करना भी होता है। इस प्रकार, टाइप कैरेक्टर लोक नाट्य में किसी एक विशेष गुण या सामाजिक भूमिका के प्रतीक के रूप में कार्य करते हैं ।

3. खुला रंगमंच

लोक-नाट्य सामान्यतः खुले मंच पर खेले जाते हैं। इनमें रंगमंचीय उपकरणों का अत्यधिक प्रयोग नहीं होता। केवल एक पर्दा पृष्ठभूमि में लगाया जाता है और दृश्य परिवर्तन की औपचारिकता लगभग अनुपस्थित रहती है। कभी-कभी यह खुले मैदान, खुले आँगन में भी प्रदर्शित किए जाते हैं जहाँ पर्दे की आवश्यकता एवं अन्य मंचीय औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती ।

4. संकेतात्मक अभिनय

लोक-नाट्यों की अभिनय-शैली संकेतात्मक होती है। इसमें नृत्य-हावभाव का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। कलाकार अपनी मुद्राओं और आंगिक चेष्टाओं से कथा को प्रभावी बनाते हैं।

5. पौराणिक कथा और विदूषक की भूमिका

अधिकांश लोक-नाट्य पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हैं। कथा-विस्तार के मध्य निश्चित अंतराल पर विदूषक का प्रवेश होता है, जो दर्शकों का मनोरंजन करता है। विदूषक गंभीर प्रसंगों को हल्का बनाता है और समसामयिक विषयों पर व्यंग्यपूर्ण, चुटीली टिप्पणियाँ करता है जिससे हास्य रस की सृष्टि होती है।

6. कथानक से अधिक रसाभिव्यक्ति

लोक-नाट्यों में कथानक का महत्त्व अपेक्षाकृत कम होता है क्योंकि दर्शक पहले से ही इन कथाओं से परिचित होते हैं। यहाँ अधिक महत्त्व रसानुभूति का होता है, जिससे दर्शक भावविभोर होकर तृप्ति का अनुभव करते हैं।

7. भूमिकाओं की अदला-बदली

लोक-नाट्य की एक विशेषता यह भी है कि मंडली का कोई भी सदस्य परिस्थितिनुसार किसी भी पात्र का अभिनय कर सकता है। उदाहरणस्वरूप, नायक या विदूषक की भूमिका बदलना या निर्देशक का कार्य स्वयं करना सामान्य बात होती है।

8. लोकजीवन और परंपराओं का प्रतिबिंब

लोक-नाट्यों में लोकजीवन की परंपराएँ, रीति-रिवाज और उत्सवों का उल्लेख अनिवार्य होता है। साथ ही, इनमें लोकगीतों, कहावतों और लोक-प्रचलित धुनों का भरपूर प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि ये नाट्य-शैली लोकजीवन के साथ गहरे रूप से जुड़ी रहती है।

7.8 लोक-नाट्य परम्परा:

लोक नाट्य की परम्परा को लेकर विद्वानों के विचार एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान मानते हैं कि वेदों की परम्परा ही लोकनाट्य की मूल आधारशिला है, जबकि अन्य विद्वानों के अनुसार इसके प्रारम्भिक रूप रामायण और महाभारत के वे गायक हैं जिन्हें 'पाठक' और 'धारक' कहा जाता था। इन्हीं गायकों को रामलीला और रासलीला की प्रेरणा-स्रोत भी माना गया है। साथ ही, एक मत यह भी है कि संस्कृत नाटकों की नींव स्वयं लोकनाट्य परम्परा से पड़ी।

डॉ. दशरथ ओझाका कहना है कि हिन्दी नाट्य परम्परा की जड़ें उन 'वन नाटकों' में हैं, जो प्राचीन काल में 'स्वांग' आदि नाम से अस्तित्व में थे और आज भी अपने रूप में जीवित हैं।

डॉ. श्याम परमारका मत है कि मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के दौरान जब उच्च कोटि का रंगमंच उपलब्ध नहीं था, तब लोकमंच को उभरने का अवसर मिला। उस समय के प्रमुख संतों ने लोकनाट्य की शैली को अपनाकर गीति-नाट्य परम्परा को बढ़ावा दिया।

सदियों पुरानी इस परम्परा ने समय के साथ ऐसा उत्कर्ष पाया कि आज भी देश के विभिन्न अंचलों में यह जीवित परम्परा के रूप में दिखाई देती है। पर्वों, मेलों और उल्लास के अवसरों पर ये लोकनाट्य अब भी रंगमंच पर प्रस्तुत किए जाते हैं। उदाहरणस्वरूपब्रज और हरियाणा का**स्वांग**, वृन्दावन की**रासलीला**, हिमाचल का**करिमाला**, मिथिला का**कीर्तनिया**, असम का**अंकिया नाट**, भोजपुरी क्षेत्र की**रामलीला**, सिक्किम का **रामायण, महाभारत बालन**, महाराष्ट्र का**तमाशा**, गुजरात का**भवाई**, बिहार का**विदेसिया**, तथा राजस्थान का**ख्याल**आज भी लोकजीवन के साथ गहरे जुड़े हुए हैं।

7. 9 लोक-नृत्य की उत्पत्ति :

नृत्य की उत्पत्ति का आधार उल्लास और उमंग को माना जाता है। जब मनुष्य हर्षोल्लास से भर उठता है, तब उसका उछलना-कूदना, किलकारियाँ भरना, हाथ-पाँवों को लयात्मक गति देना उसके आनंद भाव को प्रकट करता है। यही क्रियाएँ नृत्य का प्रारम्भिक रूप मानी गईं। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों में भी जब उल्लास जाग्रत होता है तो वे नृत्य की मुद्रा में आ जाते हैं। जैसे- कबूतर अपने साथी को लुभाने के लिए नाचता है, वर्षा ऋतु में मोर घने बादलों को देखकर पंख फैलाकर नृत्य करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नृत्य का उद्भव आनंद और उल्लास की भावना से हुआ है। उल्लास का यह प्रभाव जब प्राकृतिक तत्त्वों और पशु-पक्षियों को भी नृत्यरत कर देता है, तो मनुष्य इसका अपवाद कैसे हो सकता है!

आदिकाल से ही नृत्य मानव जीवन का अभिन्न अंग रहा है। जैसे-जैसे उसका जीवन भयमुक्त हुआ और वह आनंद की ओर अग्रसर होने लगा, वैसे-वैसे नृत्य का स्थान भी उसके जीवन में दृढ़ होता गया। यही अवस्था आदिम नृत्य का रूप थी। जब आदिम मानव समूहों में रहने लगा, सामाजिकता और सामूहिकता की भावना का उदय हुआ, तब वे सामूहिक रूप से नृत्य करने लगे और यहीं से लोक-नृत्यों का उद्भव हुआ। समय बीतने के साथ जब इन लोक-नृत्यों में कलात्मक सूक्ष्मता और परिष्कार आने लगा, तो वे जटिल और तकनीकी हो गए। इस रूप ने शास्त्रीय नृत्यों का स्वरूप ग्रहण किया, जो धीरे-धीरे एक सीमित वर्ग तक ही सिमटकर लोक की पहुँच से बाहर हो गए। इस प्रकार विद्वानों के अनुसार नृत्य की यात्रा आदिम नृत्यों से होकर लोक-नृत्यों और फिर शास्त्रीय नृत्यों तक पहुँची।

7.10 लोकनृत्य की प्रमुख विशेषताएँ:

लोक-साहित्य के विद्वानों ने लोक-नृत्यों की विशेषताओं को कई बिंदुओं में स्पष्ट किया है, जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है –

1. सरलता और सहजता

लोक-नृत्य अत्यंत सहज और सबके लिए सुलभ होते हैं। इन्हें सीखना या करना किसी विशेष प्रशिक्षण पर निर्भर नहीं करता। यही कारण है कि विवाह, त्योहार या किसी अन्य अवसर पर स्त्रियाँ और पुरुष सहज रूप से इन्हें कर लेते हैं। परंपरा और वातावरण के कारण बच्चे भी बचपन से ही इन नृत्यों को अपना लेते हैं। कुछ विशेष नृत्यों जैसे'भवाई' (गुजरात)में तो कलाकारों की नई पीढ़ी जन्म से ही इस कला को आत्मसात कर लेती है, उन्हें अलग से प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती।

2. अप्रयत्नशीलता

नृत्यकला के तीन आधारभूत तत्व होते हैं - ताल, लय और अंग-भंगिमाएँ। शास्त्रीय नृत्यों में इनका पालन नियमपूर्वक करना पड़ता है, किन्तु लोकनृत्य में ये तत्व स्वाभाविक रूप से ही नर्तक के साथ रहते हैं। ऐसा लगता है मानो ताल और लय स्वयं नृत्यकार की गति का अनुसरण करती हों। कलाकारों को एक-दूसरे की भंगिमा का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि सबमें एक स्वाभाविक एकरूपता प्रकट होती है।

3.सामूहिकसृजन

लोक-नृत्य किसी एक कलाकार की देन नहीं होते। ये पूरे समाज के सामूहिक सृजन से बने होते हैं। पहले किसी एक व्यक्ति ने कोई भंगिमा बनाई होगी और फिर समय के साथ उसमें अन्य लोगों ने नए-नए प्रयोग जोड़े। इस तरह ये धीरे-धीरे पूरे समाज की धरोहर बन गए।

4. परंपरा और संस्कृति का दर्पण

लोक-नृत्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि लोकजीवन की परंपराओं, विश्वासों और संस्कारों का परिचायक होते हैं। ये अति प्राचीन समय से समाज में प्रतिष्ठित हैं और लोगों के धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं। यही कारण है कि ये नृत्य सामाजिक और आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन को उन्नत और समृद्ध बनाते हैं।

5. विविधता में एकता

लोक-नृत्यों में भंगिमाओं और चालों की विविधता रहती है, लेकिन फिर भी उनका प्रभाव सामूहिक और एकरूप ही होता है। अलग-अलग दिशाओं में घूमते, अलग-अलग अंग-भंगिमाएँ करते हुए भी सभी कलाकार एक ताल और एक लय में बँधे रहते हैं, जिससे संपूर्ण नृत्य अत्यंत आकर्षक और मनोहारी प्रतीत

6. सामुदायिकता का भाव

लोक-नृत्य व्यक्तिगत प्रदर्शन के लिए नहीं, बल्कि सामूहिक आनंद और सामाजिक एकता के लिए होते हैं। त्योहारों, उत्सवों या संस्कारों पर नृत्य का होना आवश्यक माना जाता है। सामूहिकता की यह भावना इन्हें केवल मनोरंजन न बनाकर सामाजिक और धार्मिक कर्त्तव्य का रूप देती है। यहाँ व्यक्तिगत लाभ से अधिक समाज की एकता और आनंद की भावना प्रबल रहती है।

7. शास्त्रीयता से परे, परन्तु उच्च कोटि केगुणों से युक्त

लोक-नृत्य भले ही शास्त्रीय नृत्यों की कठोर नियमावली से परे हों, परंतु इनमें वही सौंदर्य, आनंददायिनी शक्ति और विशेष कलात्मकता देखने को मिलती है।'बिहू', 'गरबा', 'घूमर', 'भवाई'या'वालर'जैसे नृत्यों में प्रभावोत्पादकता और सृजनात्मकता किसी भी शास्त्रीय नृत्य से कम नहीं होती। इनकी विशिष्टता उनकी स्वाभाविकता, सरलता और आडंबरहीनता में निहित है।

स्मरणीय बिंदु:

- नृत्य की उत्पत्ति का मूल आधारमानव की आनंद, उल्लास और उमंगकी भावना है।
- हर्ष की अवस्था में मनुष्य की स्वाभाविक क्रियाएँ-उछलना, कूदना, लयात्मक गति-नृत्य का प्रारम्भिक रूप हैं।
- केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी भी (जैसे कबूतर, मोर) उल्लास में नृत्य जैसी क्रियाएँ करते हैं।
- आदिकाल से ही नृत्य मानव जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है।
- प्रारंभ में नृत्यआदिम (प्राकृतिक) रूपमें था, जो मनुष्य के भावों की सहज अभिव्यक्ति था।
- सामाजिकता के विकास के साथ नृत्यसामूहिक रूपमें विकसित हुआ और यहीं से लोक-नृत्यों का उद्भव हुआ।
- समय के साथ परिष्कार और तकनीकी विकास के कारण लोक-नृत्य विकसित होकरशास्त्रीय नृत्योंमें परिवर्तित हो गए।

7.11 लोककथा : अर्थ और स्वरूप:

'कथा' शब्द संस्कृत की'कथ्'धातु से बना है, जिसका सामान्य अर्थ है-कहा जाने वाला, परंतु केवल इतना अर्थ कथा की संपूर्णता को व्यक्त नहीं करता। वास्तव में, कथा

का आशय किसी ऐसी घटना या प्रसंग को कहने से है, जो एक निश्चित क्रम और उद्देश्य के साथ प्रस्तुत किया जाए। कथा केवल कहने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि इसमेंकहने वालेऔरसुनने वालेदोनों की उपस्थिति आवश्यक है, क्योंकि बिना श्रोता के कहने का कोई महत्व नहीं रह जाता। लोक-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप मेंलोककथामानव की भावनाओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों और विचारों को अभिव्यक्त करने का सशक्त मौखिक माध्यम है। इसमें जीवन के यथार्थ और आदर्श का सुन्दर संगम दिखाई देता है। लोककथाएँ श्रोता के मन में जिज्ञासा उत्पन्न करती हैं और फिर उन जिज्ञासाओं को समाधान भी प्रदान करती हैं। इन कथाओं की विशेषता यह है कि ये प्रायः निश्चित कथानक, परंपरागत रूढ़ियों और विशिष्ट शैलियों में ढली होती हैं। समय और परिस्थिति के अनुसार ये विभिन्न क्षेत्रों और संदर्भों में अलग-अलग रूप धारण करती रहती हैं। मौखिक परंपरा के माध्यम से ही ये पीढ़ी दर पीढ़ी हमें विरासत के रूप में प्राप्त होती रही हैं। लोक कथा के अर्थ और स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी- "लोक कथा शब्द मोटे तौर पर लोक प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता है,जो मौखिक या लिखित परम्परा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते रहते हैं।"

डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती- "जो कथावस्तु और कलात्मक कथन प्रणाली एक साहित्यिक सौन्दर्य प्राप्त कर लेती है, लोक कथा कही जाती है। लोक कथा विश्वव्याप्त है। इसमें लोकजीवन नाना रूपों में प्रकट होता चला आ रहा है। मानव के दुःख- सुख, रीति-रिवाज, आस्थाएँ एवं विश्वास इन लोक कथाओं में अभिव्यक्त होते रहते हैं। लोककथा मौखिक रूप में ही प्राप्त है।"

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल- "मानव के सुख-दुःख, प्रीति-शृंगार, वीर भाव और बैर इन सबने खाद बनकर लोक-कथाओं को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, पूजा-उपासना आदि इन सबसे कहानी का ठाट बनता और बदलता रहता है। कहानी मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रान्ति का साधन है। मन के आयास को हटाने के लिए कहानी मानव-समाज का प्राचीन रसायन है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे कथाएँ, जो जन-जीवन से गहराई से संबंधित हैं और जो प्राचीन समय से मौखिक परंपरा के माध्यम से निरंतर परिवर्तित व परिष्कृत होती हुई आज तक प्रचलित हैं, वहीलोककथाएँकहलाती हैं।

7.12 सारांश :

लोक-साहित्य भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न अंग है, जिसमें लोकगीत, लोकनाट्य, लोकनृत्य और लोककथा शामिल हैं। यह समाज के सामूहिक जीवन, रीति-रिवाज, विश्वास और भावनाओं का जीवंत दर्पण है।लोकगीत समाज के भावों और अनुभवों का संगीतमय रूप हैं। ये न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति भी हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में लोकगीतों का वर्गीकरण उनकी विषयवस्तु, प्रदर्शन शैली और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार किया गया है। लोकगीत रचना की आंतरिक प्रक्रिया में संगीत, लय, भाव और शब्दों का विशेष महत्व होता है। रचनाकार अनुभव और कल्पना के माध्यम से अपने गीतों में जनमानस की संवेदनाओं को स्थान देता है।

लोकनाट्य का जन्म समाज की सामूहिक भावनाओं और उत्सवों की अभिव्यक्ति के रूप में हुआ। यह नाटकीय घटनाओं और कहानियों का लोक-संस्करण है, जिसमें अभिनय, संवाद, संगीत और नृत्य का समन्वय होता है। लोकनाट्य की विशेषताएँ इसकी सरलता, दृश्यात्मकता, सजीवता और दर्शकों के साथ प्रत्यक्ष संवादशीलता हैं। लोकनाट्य परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है और यह समाज की मूल सांस्कृतिक चेतना को संरक्षित करने का माध्यम है।

लोकनृत्य का जन्म उत्सवों, कृषि कार्यों, धार्मिक अनुष्ठानों और सामूहिक खुशियों से हुआ।उत्तर-पूर्वी भारत में प्रत्येक समुदाय का अपना विशिष्ट लोकनृत्य है। लोकनृत्यों की प्रमुख विशेषताएँ हैं- शारीरिक लय और गति का प्राकृतिक प्रवाह, पारंपरिक वेशभूषा और संगीत का प्रयोग, सामूहिक प्रदर्शन और सामाजिक-सांस्कृतिक संदेश का समावेश। ये नृत्य समाज में एकता, सहयोग और सांस्कृतिक चेतना को प्रकट करते हैं। लोककथा वह साहित्यिक रूप है जो जनमानस की जीवन-धाराओं, अनुभवों, आशाओं और भय को कथानक के रूप में प्रस्तुत करती है। इसका स्वरूप साधारण भाषा, काल्पनिक पात्र और सामाजिक या नैतिक संदेशों पर आधारित होता है। लोककथा में ग्रामीण जीवन, परंपराएँ, देवता, नायक-नायिका और जनमानस के संघर्षों का चित्रण मिलता है।संक्षेप में हम कह सकते हैं कि- लोकगीत, लोकनाट्य, लोकनृत्य और लोककथा भारतीय संस्कृति के मूलभूत अंग हैं। ये न केवल मनोरंजन करते हैं, बल्कि समाज की परंपरा, सामाजिक मूल्य और सांस्कृतिक चेतना को जीवित रखते हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में इनकी विविधता और समृद्धि इसे सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बनाती है। लोक-साहित्य समाज की सामूहिक स्मृति, अनुभव और सौंदर्यबोध का सजीव दस्तावेज है।

7.13 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा) :

प्रश्न 1 का उत्तर- लोक-नाट्य समाज में मनोरंजन के साथ ही लोकशिक्षा, धार्मिक आस्था, सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण का कार्य करता है।

प्रश्न 2 का उत्तर- लोकनृत्य का प्रारंभिक उद्देश्य धार्मिक अनुष्ठानों, देवी-देवताओं की आराधना, प्रकृति के प्रति आभार और सामूहिक उल्लास को व्यक्त करना था।

प्रश्न 3 का उत्तर- लोककथा समाज को नैतिक शिक्षा, परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़ती है।

प्रश्न 4 का उत्तर- लोकगीत रचना में सामूहिक अनुभव, भावनाएँ और जीवन संघर्ष की अभिव्यक्ति झलकती है।

प्रश्न 5 का उत्तर- लोकगीत समाज की भावनाओं, परंपराओं और जीवन-संघर्षों को व्यक्त करते हैं और संस्कृति की पहचान को सुरक्षित रखते हैं।

7. 14 अधिक जानने के लिए पढ़े :

- ग्रोवर, सी. ई. (1871). *फोक-सॉन्ग्स ऑफ साउदर्न इंडिया.* मद्रास: हिग्गिनबोथम।
- शर्मा, एम. (2004). *फोक इंडिया: ए कम्प्रिहेन्सिव स्टडी ऑफ इंडियन फोक म्यूजिक एंड कल्चर* (11 खंड). नई दिल्ली: संदीप प्रकाशन।
- गोस्वामी, प्रफुल्लदत्त. (1957). *बिहू साँग्स ऑफ असम.* गुवाहाटी: लॉयर्स बुक स्टॉल।
- बसु, प्रियंका. (2024). *द पोएट्स सॉन्ग: 'फोक' एंड इट्स कल्चरल पॉलिटिक्स इन साउथ एशिया.* न्यूयॉर्क/एबिंगडन: रूटलेज।
- मेहता, जया. (2024). *नृत्य कथा: इंडियन डांस स्टोरीज़ फॉर चिल्ड्रन.* नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
- लुहार, साहदेव (सम्पा.). (2023). *फोकलोर स्टडीज़ इन इंडिया: क्रिटिकल रीजनल रिस्पॉन्सेस.* आनंद: एन. एस. पटेल आर्ट्स कॉलेज।
- राघवन, एम. डी. (वर्ष). *फोक प्लेज़ एंड डांसेज़ ऑफ केरल.* केरल: प्रकाशक।
- गोपालकृष्णन, के. के. (वर्ष). *थेय्यम: इंडियन फोक रिचुअल थिएटर – एन इनसाइडर'स विज़न.* नई दिल्ली: प्रकाशक।
- देवी, रागिनी. (वर्ष). *डांस डायलैक्ट्स ऑफ इंडिया.* दिल्ली: प्रकाशक।
- जोशी, सत्य मोहन. (1956). *हाम्रो लोक संस्कृति.* काठमांडू: रत्ना पुस्तक भण्डार।

7.15 अभ्यास-प्रश्न :

क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तरसंक्षेप में लिखिए:-

1. लोकगीत का सामान्य अर्थ लिखिए।
2. लोकगीत रचना की आंतरिक प्रक्रिया में किन तत्वों का योगदान रहता है?
3. लोक-नाट्य की उत्पत्ति कब और कैसे हुई?
4. लोक-नाट्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
5. लोकनृत्य की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए ।
6. लोककथा का स्वरूप समझाइए।

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से लिखिए:-

1. लोकगीतों का महत्व और समाज में इसकी भूमिका समझाइए ।
2. उत्तर-पूर्वी भारत के सांस्कृतिक धरोहर रूपी लोकगीतों उदाहरण सहितका वर्गीकरण प्रस्तुतकीजिए ।
3. लोक-नाट्य की उत्पत्ति और विकास का इतिहास लिखिए ।
4. लोक-नाट्य की विशेषताओं और उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व समझाइए ।
5. लोकनृत्य की उत्पत्ति और प्रारंभिक उद्देश्य विस्तार से बताइए।
6. लोकनृत्यों की प्रमुख विशेषताएँ और उनकी सांस्कृतिक प्रासंगिकता समझाइए।
7. लोककथा का अर्थ, स्वरूप और समाज में उपयोगिता का विश्लेषण कीजिए।



This document was created with the Win2PDF “Print to PDF” printer available at

https://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.
Visit https://www.win2pdf.com/trial/ for a 30 day trial license.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

https://www.win2pdf.com/purchase/